थर्मस में कैद कुनकुना पानी

रमेश बक्षी

थर्मस में कैद कुनकुना पानी

कोई बात है कि मैं मिनट-मिनट पसीने में भीग रहा हूँ पर ट्रेन चल रही है, यूँ कहूँ कि चले चल रही है। रात शायद आधी से अधिक जा चुकी है। मैं खिड़की से लगा हूँ। सो भी सकता हूँ पर सोने में बड़ी बेचैनी अनुभव करता हूँ इसीलिए बैठा हूँ - केवल बैठा हूँ और गुजरने वाले जंगल, नदी-नाले देखे जा रहा हूँ, पर ऐसे देख रहा हूँ जैसे कुछ दीख ही नहीं रहा हो मुझे। ट्रेन की आवाज तो हो रही है बैठा हूँ तब से हो ही रही है पर जैसे मुझे

सुनाई ही नहीं देती। आवाज हो रही है तो हो रही है पर मैं बैठा हूँ - कुछ ऐसे बैठा हूँ कि चलती ट्रेन के कारण धारावाहिक रूप से अपने शरीर का हिलना भी महसूस नहीं कर रहा हूँ। हाँ, शरीर का हिलना यूँ लग रहा है जैसे कोई मेरे दोनों कंधों को पकड़कर झिझोड़ रहा हो पर मैं इस तरह झिझोड़े जाने से भी नहीं चौंकता, जैसे नींद में डूबा शरीर का हिलना यूँ लग रहा है जैसे कोई मेरे दोनों कंधों को पकड़कर झिझोड़ रहा हो पर मैं इस तरह झिझोड़े जाने से भी नहीं चौंकता, जैसे नींद में डूबा होऊँ। डिब्बे के प्रकाश की एक सीधी पट्टी आस-पास के पेड़ों से गुजरती जा रही है, मैं बार-बार आँखें मलता हूँ। मेरी आँखों के आगे बार-बार फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहे वाली ताजी उम्र की एक लड़की आ जाती है। आ ही नहीं जाती, आकर ठहर जाती है, ठहर ही नहीं जाती, ठहरकर हटती ही नहीं। मैं आँखें मलता हूँ तो भी नहीं हटती। मैं खट् से शीशा गिराकर आने वाली सर्द हवा को रोक देता हूँ फिर भी नहीं हटती, हटती ही नहीं। मेरा जी चाहता है कि इस आकृति के सामने कुहनी तक हाथ जोड़कर निवेदन करूँ कि इस तरह मेरे सामने न आ।

मैं अपनी ट्रेनिंग पूरी करके पूरे पौने दो वर्षों में घर लौट रहा हूँ - वहाँ मेरी माँ है, मेरी छोटी बहन है और है मेरी नई ब्याही पत्नी।... पत्नी? हाँ पत्नी! पर यह सामने कौन है? यह? यह कौन?... ये दीवारें, ये छत, ये खिड़कियाँ...अरे, यह तो मेरा घर है... मैं देहरादून से अपने घर लौट तो आया। ट्रेन चल रही है? मैं हिल रहा हूँ? रात है... अरे, तुम पागल तो नहीं हुए? सपना तो नहीं देख रहे? यह तो सही है कि तुम ट्रेन में बैठे थे, उसी में बैठकर तो यहाँ अपने घर लौटे हो... अभी तक ट्रेन का ही ध्यान बना है...! मैं भी अजीब हूँ... हर बात स्मृति में गोंद की तरह आ चिपकती है और मैं कही डूब जाता हूँ। अब देखो न, मैं घर लौट आया फिर भी यूँ लग रहा है जैसे ट्रेन में बैठा हूँ और ट्रेन चल रही है ओर जंगल-नदी-नाले देख रहा हूँ और मेरा शरीर हिल रहा है और डिब्बे के प्रकाश की पट्टी गुजरते पेड़ों पर से होती हुई चल रही है और मेरी आँखों के आगे बार-बार क्या? बार-बार वही आकृति... उसे आकृति क्यों कहते हो?... तुम कोई सपना नहीं देख रहे, कुछ सोच नहीं रहे? अपने घर में हो तुम... और वह देखो-फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, घर के गोरख-धंधे में बझी है वह लड़की - जिसे तुम ताजी उम्र की लड़की कहते हो।

'सुनो।'

'जी।'

'इधर तो आओ। पूरे पौने दो वर्ष में देहरादून से लौटा हूँ और तुम हो कि घर का बुहारा लगाने में लगी हो।'

'पास के कमरे में माँ पूजा कर रही हैं।' वह इतना कह फिर धूल उड़ाने लगी। मैं ही गया उसके नजदीक।

'इतने दिनों में मैं याद भी आया तुम्हें?'

'हूँ।' वह एक कदम पीछे हट गई। मैंने आगे बढ़ उसके हाथ थाम लिए। जैसे कोई माँ अपने जिद्दी बच्चे के हाथ से काँच की कोई चीज उसके फूट जाने के डर से एकदम उससे छीनकर 'कौव्वा ले गया' कहकर छिपा देती है वैसे ही उसने मेरे हाथों से अपने हाथ छूड़ाकर पीछे की ओर बाँध लिए। मैं जिद्दी बच्चे की तरह मचला तो नहीं पर उसे गौर से देखने लगा, वैसी की वैसी ही तो है। तब भी ऐसे ही बालों में गठान लगा लिया करती थी, अब भी लगाए है, कितनी बार कहा कि जवान लड़कियों को जूड़ा नहीं फबता, वे तो चोटी में ही निखरती है, पर मानती ही नहीं। कहती है, 'क्या होगा चोटी गूँथकर?' 'क्या होगा?' से क्या मतलब? क्या कुछ होने को ही हम सब कुछ करते हैं - कपड़े पहनना, शेविंग करना, खाना खाना...? शादी के बाद तीनेक महीने तो यह सब कहता रहा फिर मेरा कहना धीमा पड़ गया, या यूँ कहूँ कि मैंने कहना ही छोड़ दिया। वह वेसी-की-वैसी ही गंदी बनी रहती है। दिन भरी फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, घर के गोरख-धंधे में बझी रहती है।

वैसे ही बुहारा लगाती है, वैसे ही रोटियाँ सेंकती है, वैसे ही फटे कपड़े सीती है और वैसे ही मेरे पास आकर सो जाती है - कई बार मुझे लगता रहा कि रसोई के कोने में रखी लंबी झाड़ू मेरे नजदीक आकर सो गई हे और उसका खजूर वाला शरीर चुभ रहा है। जब उसका शरीर जोर से चुभने लगता तो गुस्से में पलटकर मैं उसकी ओर देखता कि पत्नी के हाथ का लाखवाला चुड़ला मुझे चुभ रहा है, चुड़ला भी कोई हाथ में पहनने की चीज है, कई बार कहा यह उससे। नफीस चूड़ियाँ लाकर भी दी, पर नहीं पहनीं। न पहनो तो न पहनो, अचार डालो उनका!

मैंने एक बार फिर गौर से देखा उसको - उसको ही नहीं, मैं घर की एक-एक चीज को गौर से देखने लगा। कई बार मेरा मन नहीं कहता मुझसे, 'इस तरह शक-संदेह क्यों कर रहे हो?' पर मैं इस कही की अनसुनी कर जाता क्योंकि संदेह कोई मक्खी नहीं जो चाय के प्याले में गिर गई हो और उसे बड़ी आसानी से निकाल बाहर फेंक दिया जा सके। घर का दरवाजा वैसा-का-वैसा ही हे, ऐसी ही ढीली साँकल तब भी थी और ऐसे ही रात को कुंदे में तब भी कीला फँसाया जाता था, और तो और जिस रस्सी से तब यह

कीला बँधा था अब भी वैसा ही बँधा है, बरसों से बंधा है यह - सन पच्चास में मेरा पट्टे वाला पाजामा जब फटा था तो उसके नाड़े से यह कीला बाँध दिया गया था ओर शेष कपड़े से तकिए के दो गिलाफ बना लिए गए थे। मैंने अंग्रेजी में अपने नाम का स्पेलिंग लिखना सीखा था, तब इस दरवाजे पर सफेद खड़िया से कैपीटल अक्षरों में नाम लिख दिया था, वह नाम भी अब तक लिखा-का-लिखा है - हाँ, रंग उसका पीले और काले के बीच का हो गया है। पर मैं किसी बात से अब भी पसीने से नहा रहा हूँ। अरे, वैसा भी कही हो सकता है - पर हो क्यों नहीं सकता?... मैं सारे घर में तेज-तेज कदमों से घूमने लगा। दीवार वैसी की वैसी ही, छत भी वैसी ही, माँ के चेहरे की झुरियाँ वैसी-की-वैसी ही, ही हैं - वैसे ही राई से छौंककर अब भी दाल बघारी जाती है, वैसे ही कच्ची लकड़ियों के धुएँ से रोटियाँ अब भी पीली -पीली सेंकी जाती हैं।

मैंने रूमाल से पसीना पोंछ लिया और आगे बढ़ा - फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, मेरी पत्नी घर के गोरख-धंधे में बझी है। मैंने खुद को धिक्कारा की पत्नी के बारे में ऐसी-वैसी बातें क्यो सोची मैंने?... पर मैं थोड़ी देर में ऐसे चौंका जैसे आकाश में चमकता स्पूतनिक देख लिया हो। फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाये मेरी पत्नी ने चमकती किनारी की साड़ी पहन ली... यह साड़ी कहाँ से आई? मैं तो कभी ऐसी साड़ी खरीद कर नहीं लाया। तभी कोई दो मेरे दरवाजे में झाँकते-से सीटी बजाते गुजर गए। मैं फिर पसीने में तर हो गया। मेरी पत्नी ने अँगड़ाई ली और एक ताजी फिल्म के प्रसिद्ध गाने की चार पंक्तियाँ राग से गाने लगी वह। मैं उठ खड़ा हुआ। कहाँ से सीख लिया इसने यह फिल्मी गाना? क्या मेरे जाने के बाद... मैं गुस्से में काँपने लगा। वह अंदर के कमरे में जाने लगी तो मैं उसके पीछे हो लिया। अंदर ही एक बच्चा रोया, बच्चा? मेरे घर में? किसका है? मेरी पत्नी आगे बढ़ी और उस बच्चे को उठा लिया उसने। गोद में लिया, छाती से लगाया और दूध पिलाने लगी उसे।

'किसका बच्चा है यह**?**' मैं गरज उठा।

'मेरा।' वह काँप गई तो बच्चे के मुँह में आए दूध का आधा घूँट उसकी चमकीली साड़ी पर बिखर गया।

'तुम्हारा**?**' मैं एक राक्षस की तरह दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधे उसकी तरफ बढ़ा, 'मैं तो यहाँ था नहीं और**...**।'

वह इतनी ढीठ और दृढ़ कैसे हो गई? बोली, 'आप चले गए थे तो क्या हमने खाना नहीं खाया, पानी नहीं पीया, हम सोये नहीं, जागे नहीं?'

मैं उसकी एकबात भी न सुन पाया। मैंने अपने दोनों हाथ बाँधकर उसके सिर पर दे मारे। दो-तीन महीने का बच्चा जोर से रो पड़ा। उसने बच्चे को छाती से चिपका लिया और चुप बनी रही।

मेरी आँखों से शोले बरसने लगे, सिर घूमने लगा - मेरे एक हाथ ने अपने दूसरे हाथ को पीसा डाला। उसकी तरफ चार इंची डग से बढ़ते हुए मैं चिल्लाया, 'किसका बच्चा है ये?' मेरी मुद्रा और चिल्लाहट सुन वह चीख उठी। उसकी चीख के समुद्र पर मेरा क्रोध फेन की तरह बहने लगा, 'वही तो हुआ जो सोचा था, और जाओ ट्रेनिंग पर।' घर की दीवारे खिलखिला उठीं, 'अरे ट्रेनिंग पर गए तो गए। इतनी-सी बात से पत्नी बच्चे देना बंद कर दे क्या?' मुझे यूँ लगा जैसे दीवार के इस व्यंग्य ने मेरे अंदर ज्वालामुखी को हिला दिया है। मैंने पास पड़ा चाकू उठाया और पत्नी की गरदन पर तेजी से वार किया। वह चीखी और गिर पड़ी। खून का फौव्वारा मेरे चेहरे पर फूट पड़ा। मैंने अपने दोनों हाथ आँखों के आगे कर दिए - खून में तर - फटी साड़ी पहनने वाली, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहने वाली खून में तर! लश के पास पड़ा दुधमुँहा बच्चा हलक बाँधकर रोया तो जाने क्यो मेरे मुँह से चीख निकल गई।

'क्या हुआ बाबू?' सामने की सीट पर सोया बूढ़ा मुझसे पूछ रहा था और मैंने देखा कि डिब्बे के सभी सोए जाग गए हैं और आँखें फाड़-फाड़कर मेरी ओर देख रहे हैं। मेरे पीछे की सीट पर माँ की गोद में बच्चा रो रहा था और मैं पसीने में तर था। पसीना पोंछते मैंने पूछा, 'क्या हुआ बाबा?'

'तुम ही तो जोर से चीखे।' बूढ़ा आदमी मुझे गौर से देख रहा था। मैंने सबकी ओर देखा, कहीं भी तो कुछ नहीं। ट्रेन चल रही है और मैं ट्रेन में बैठा हूँ और जंगल-नदी-नाले देख रहा हूँ और मेरा शरीर हिल रहा है और डिब्बे के प्रकाश की पट्टी गुजरते पेड़ों पर से होती हुई चल रही है और मेरी आँखों के आगे बार-बार फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहने वाली ताजी उम्र की एक लड़की आ जाती है - थोड़ी देर पहले अभी मैंने जिस पर चाकू से हमला किया था।

मैं स्वस्थ होकर बैठ गया। इस देहरादून की ट्रेनिंग में मैं इतना संदेही क्यों हो गया? पत्नी के बारे में इतनी और ऐसी बुरी बातें क्यों सोची मैंने? वाह रे संदेह! मेरी अनुपस्थिति में उसे बच्चे की माँ भी बना दिया। वह तो फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहती

है। उसे घर के सामने की सड़क के बारे में भी कुछ नहीं मालूम कि वह कच्ची है या पक्की? कौन जाने इन पौने दो वर्षों में उसे मेरी कितनी याद आई होगी...

डिब्बे के लोग एक-एक कर फिर सो गए। कोई छोटा-सा स्टेशन आया। ट्रेन रूकी। हमारे डिब्बे में से कोई तीन उतर गए। ट्रेन खाली-सी हो गई और मैंने पैर लंबे कर लिए। अब ट्रेन चली तो मैं अपने शरीर का हिलना महसूस करने लगा। पहियों की छक्पक्, सीटी, इक्के-दुक्के जगते हुओं की कानाफूसियाँ - सब-कुछ अलग-अलग सुन पड़ने लगा। पत्नी की हत्या वाला किस्सा (या विचार, या सपना) बार-बार याद आया और मन घृणा से भरने लगा।

मुझे यूँ लगने लगा जैसे अब तक ट्रेन टेढ़ी-मेढ़ी घाटियों और गुफाओं में से चल रही थी पर अब मैदान में सीधी पगडंडी पर चल रही है। पर मुझे अपने घर की बातों की जगह देहरादून क्यों याद आ रहा है? कोई चीज जब खरीद कर लाते हैं तो हमें वह दूकान याद आती है, जहाँ से चीज खरीदी है या वह घर याद आता है जहाँ उसे खरीदकर ले जा रहे है?... मेरे मन में प्रश्न तो उठते पर मैं उत्तर न दे पाता। उत्तर न दे पाने की कमजोरी से एक घबराहट-सी पैदा हो जाती। मैं फिर मिनट-निमट पसीने में भीगने लगा। परेशानी से पसीना आता था और पसीना आने से परेशानी बढ़े जा रही थी पर ट्रेन चल रही है - बड़ी स्पीड में है...

लायब्रेरी से एक उपन्यास ले आया था मैं। जाने किसका था वह और जाने क्या था उसका नाम! दो प्रेमी-प्रेमिका थे। प्रेमिका के कपाल पर कस्तूरी की बिंदी का लेखक ने बड़े विस्तार से वर्णन किया था, मुझे अपनी पत्नी खूब याद आई उस दिन। हाँ, फिर दोनों का ब्याह हो गया। बड़ी प्यारी जोड़ी थी दोनों की।... फिर प्रेमी नौकरी पर चला गया। कौन-सी नौकरी करता था! नेवी में था वह। एक बार डेढ़ साल को बाहर गया। पत्नी या वही प्रेमिका घर थी अकेली। पड़ोसी साहब बड़ा खूबसूरत था। अपने फ्लैट की गैलरी में वायलिन बजाता और यह पत्नीनुमा प्रेमिका लुभा गई उसकी धुन पर। उनमें प्रेम हो गया। बेचारा प्रेमी लौटा और सिर पीट लिया उसने...फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी हुई पत्नी की तसवीर मेरी आँखों - आगे झूलने लगी और ट्रेन की सीटी बजी तो मुझे वायलिन की-सी आवाज सुन पड़ी...

शाम को पार्क में आ जमते ट्रेनिंग वाले दोस्तों में चर्चा चलती तो बंबई में चल रहे मुकदमे की।

एक कहता, 'एन. ने अच्छा ही किया जो पी. को शूट कर दिया।'

दूसरा बोलता, 'पी. का कोई दोष नहीं था इसमें। एन. साहब जब महीनों बाहर रहेंगे तो बेचारी एस. क्या करेगी, कब तक बिछुड़न का दर्द महसूस करे?'

तीसरा समझाता, 'दोषी एस. है। उसे ऐसा काम नहीं करना चाहिए था कि एन. के बाहर जाने पर पी. से आँखें लड़ा बैठे और एन. का पारा ऐसा चढ़ा दे कि वह पी. को मौत के घाट उतार दे।' चौथ मेरी तरफ देखता, बीच में ही आधी रोटी पर दाल ले लेता, 'अब ये ही हैं। इनकी नई ब्याही पत्नी इंदौर में है। भगवान न करे, पर पौने दो बरस की ये तो दे रहे इधर ट्रेनिंग और उधर वह...।' मैंने उसकी कालर पकड़ ली थी और गला दबा दिया था पर फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहने वाली पत्नी मेरे सामने आ खड़ी हुई थी, वैसे ही जैसे अब खड़ी है। उफ्, कितना पसीना...!

यह कौन-सा सिनेमा देखा था? शायद राजकपूर था उसमें... प्रेमी गया विदेश हवाई जहाज में बैठ वकालत पढ़ने। प्रेमिका हवाई जहाज के बादलों बीच छिप जाने पर भी रूमाल हिलाती रही थी पर रास्ते में एक कॉलेजियन से हुआ एक्सीडेंट उसका। तीखे डायलाग हुए, होते रहे ओर जैसे तीन दिन में खेत में बोए बीज अंकुर बन जाते हैं वैसे ही इश्क का जन्म हो गया। बेचारा प्रेमी विदेश से बड़ा वकील बनकर आया और उसकी छाती पर साँप लौटने लगे...। एक दोस्त फिल्म देखते में बोला था, 'किसी दूसरे से उसका प्रेम हो जाना मनोविज्ञानिक और स्वाभाविक दोनों हैं।' फिर उसने मेरे कंधे पर हाथ रखकर पूछा था, 'क्यों, ठीक है न?' मैं चौंक गया था और बोला था 'हाँ, ठीक ही तो है पर फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहने वाली मेरी पत्नी थोड़े ही ऐसा कर सकती है?'

'क्यों नहीं कर सकती?'

'नहीं, नहीं कर सकती।'

'क्यों?'

'मैं कहता हूँ वह ऐसी नहीं हो सकती।'

'पर क्यों?'

मैं पसीने में नहा गया हूँ। गरदन, काँख और भौंहों पर तो जैसे पसीने की झीरें हैं, पसीना-ही-पसीना...

मोटे चश्मे वाला चुटकुले बहुत सुनाता था। एक इतवार की शाम सुना रहा था, 'पाँच साल में पति जब लौटा तो पत्नी ने बड़ा सत्कार किया। सारा घर घुमा-घुमाकर दिखया। उसके सामने तभी दो बच्चे आए, छोटे-छोटे और बड़े प्यारे।

पति, 'क्यों, दो साल पहले इन्हीं के जन्म की बात लिखी थी न तुमने?'

पत्नी, 'हाँ नहीं तो क्या? तुम्हारी बड़ी याद करते हैं ये। लो बेटा, देखो ये हैं तुम्हारे पापा।'

एक बच्चे ने पूछा, 'पर मम्मी, अब तक तो तुम दूसरे पापा से मिलवती थीं।'

पत्नी ने समझाया, 'नहीं बेटा, असली पापा तो ये हैं।' '

चुटकुला सुन सब जोर से हँसे थे। कहकहा गूँज उठा था पर मैं चुप -का -चुप बना रहा, मुझे ऐसी गंदी बातों से घृणा है। पूछा मैंने, 'हँस क्यों रहे हो?' वह बोला, 'इसलिए कि कई बच्चे मुझे नकली पापा समझते हैं। पर तुम चुप क्यों हो?' मैं कुछ कहूँ इसके पहले ही मोटे चश्मे वाले ने कहा था, 'इसलिए कि ये असली पापा है।' और फिर हँसी का बादल फट पड़ा मैं तब मारे गुस्से के पसीना -पसीना हो गया था पर इस समय क्यों पसीना आ रहा है और बात के साथ गीत की टेक की तरह फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी रहने वाली अपनी पत्नी क्यों, और क्यों याद आ रही है?...

मेरे विचार चलते रहे, चलते ही रहे पर ट्रेन रूक गई। मेरा शहर है यह - कितना बदल गया है स्टेशन, ऐसा शेड कहाँ था पहले और इतनी दूकानें कहाँ थी। यहाँ और यह वेइंग मशीन तो उस जगह लगी थी, पर अब प्लेटफॉर्म पर आ गई है। मैंने ताँगा किया। सामान रखा। यह है मेरा मोहल्ला-कितना बदल गया है, ये इस तरफ पक्के मकान बन गए। बीच में पार्क हरा-भरा हो गया। यह है मेरी सड़क - कच्ची थी यह तो, पर अब अस्फाल्ट की बन गई। यह है मेरे घर का आँगन-तुलसी तो खूब फूल आई, इतनी मंजरियाँ पहले तो कभी नहीं लगती थीं। घर में चहल-पहल मच गई। माँ कितनी बदल गई, इतनी बुढ़िया हो गई, झुर्रियाँ ऐसी घनी तो नहीं थीं पहले। और बहन, अरे, यह लंबी हो गई। लो, पौने दो बरस में मेरे कान छूने लगी।...पर कमरा वैसा-का-वैसा ही है। वैसी ही साँकल। वैसा ही कुँदा। वैसा ही कीला जिसमें मेरे पाजामे का नाड़ा बँधा है। मेरे नाम का काला-काला-सा स्पेलिंग। और फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवल कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, दिन-भर घर के गोरख-धंधे में बझी मेरी पत्नी मेरे अपने पर भी व्यस्त है। अब भी बालों में गठान बाँधती है। अब भी कलाइयाँ चुड़ले से

भरी हैं। अब भी बुहारा लगा रही है। मैं मौका ताककर उसके पास गया। उसने मेरे पैर छू लिए। जाने क्यों इस सबने मेरे मन पर कपड़ा फिरादिया, मन का काँच साफ हो गया। सामने दीवार पर मेरी तसवीर टँगी थी और तसवीर पर कनेर का ताजा फूल घरा था।

उसके साँवले कपाल पर बिंदी चमकने लगी। वह मेरा सामान खोलने लगी। बोली, 'अरे यह क्या?'

'इसे नहीं जानती?'

'नहीं तो। बोतल है?' उसने पूछा।

'हाँ, थर्मस है यह।' मैं कहूँ इतने में वह ढक्कन खोल चुकी थी। उसका। बोली, 'अरे, इसमें पानी भरा है।' फिर थर्मस में उँगली डुबाकर बोली, 'इसमें तो कुनकुना पानी है।'

'हाँ। तीन दिन पहले देहरादून में भरा था। मेरा गला खराब था न, तो डॉक्टर ने कहा था सफर में कुनकुना पानी पीना।' मैंने उसे समझाते हुए कहा।

'तो तीन दिन से पानी वैसा-का-वैसा ही है!' यह थर्मस को हर तरफ से देख चुकी।

मेरी आँखे फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर कस्तूरी की बिंदी लगाए, घर के गोरख-धंधे में बझी अपनी पत्नी और उसके साथ में रखे थर्मस पर जाकर ठहर गईं। मुझे लगा जैसे वह स्वयं कुनकुना पानी है और मेरा घर थर्मस है। अंदर का तापमान बाहर के तापमान से हाथ नहीं मिला सकता। मैंने देखा मेरी पत्नी ने वह थर्मस कंधे पर टाँग लिया पर मुझे यूँ लगता रहा जैसे किसी बड़े भारी थर्मस ने मेरी पत्नी को अपने कंधे पर टाँग लिया है।

https://www.hindiadda.com/thermos-mein-kaid-kunakuna-pani/